

ग्रन्थपरीक्षा : कुन्दकुन्द श्रावकाचार

जैनियों को भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य का परिचय देने की जरूरत नहीं है। तत्त्वार्थसूत्र के प्रणेता श्रीमदुमास्वामी जैसे विद्वानाचार्य जिनके शिष्य कहे जाते हैं, उन श्री कुन्दकुन्द मुनिराज के पवित्र नाम से जैनियों का बच्चा-बच्चा तक परिचित है। प्रायः सभी नगर और ग्रामों में जैनियों की शास्त्रसभा होती है और उस सभा में सबसे पहले एक बृहत् मंगलाचरण (ओंकार) पढ़ा जाता है, जिसमें 'मंगलं कुन्दकुन्दार्यः' इस पद के द्वारा आचार्य महोदय के शुभ नाम का बराबर स्मरण किया जाता है। सच पूछिए तो जैनसमाज में भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी एक बड़े भारी नेता, अनुभवी विद्वान् और माननीय आचार्य हो गये हैं। उनका अस्तित्व विक्रम की पहली शताब्दी के लगभग माना जाता है। भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य का सिक्का जैनसमाज के हृदय पर यहाँ तक अंकित है कि बहुत से ग्रन्थकारों ने और खासकर भट्टारकों ने अपने आपको आपके ही वंशज प्रकट करने में अपना सौभाग्य और गौरव समझा है। बल्कि यों कहिए कि बहुत से लोगों को समाज में काम करने और अपना उद्देश्य फैलाने के लिए आपके पवित्र नाम का आश्रय लेना पड़ा है। इससे पाठक समझ सकते हैं कि जैनियों में श्री कुन्दकुन्द कैसे प्रभावशाली महात्मा हो चुके हैं। भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य ने अपने जीवनकाल में अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रणयन किया है और उनके ग्रन्थ जैनसमाज में बड़ी ही पूज्य दृष्टि से देखे जाते हैं। समयसार, प्रवचनसार और पंचास्तिकाय आदि ग्रन्थ उन्हीं ग्रन्थों में से हैं, जिनका जैनसमाज में सर्वत्र प्रचार है। आज इस लेख द्वारा जिस ग्रन्थ की परीक्षा की जाती है, उसके साथ भी श्री कुन्दकुन्दाचार्य का नाम लगा हुआ है। यद्यपि इस ग्रन्थ का समयसारादि ग्रन्थों के समान जैनियों में सर्वत्र प्रचार नहीं है, तो भी यह ग्रन्थ जयपुर, बम्बई और महासभा के सरस्वती भण्डार आदि अनेक भण्डारों में पाया जाता है। कहा जाता है कि यह ग्रन्थ (श्रावकाचार) भी उन्हीं भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य का बनाया हुआ है, जो श्री जिनचन्द्राचार्य के शिष्य माने जाते हैं और न सिर्फ कहा ही जाता है, बल्कि खुद इस श्रावकाचार की अनेक संधियों में यह प्रकट किया गया है कि यह ग्रन्थ श्री जिनचन्द्राचार्य के शिष्य कुन्दकुन्द स्वामी का बनाया हुआ है। साथ ही ग्रन्थ के मंगलाचरण में 'वन्दे जिनविधुं गुरुम्' इस पद के द्वारा ग्रन्थकर्ता ने 'जिनचन्द' गुरु को नमस्कार करके और भी ज्यादा इस कथन की रजिस्ट्री कर दी है। परन्तु जिस समय इस ग्रन्थ के साहित्य की जाँच की जाती है, उस समय ग्रन्थ के शब्दों और अर्थों पर से कुछ और ही मामला मालूम होता है। श्वेताम्बरसम्प्रदाय में श्री जिनदत्तसूरि नाम के एक आचार्य विक्रम की १३वीं शताब्दी में हो गये हैं। उनका बनाया हुआ 'विवेक-विलास' नाम का एक ग्रन्थ है। संवत् १९५४ में यह ग्रन्थ अहमदाबाद में गुजराती भाषाटीका सहित छपा था। और इस समय भी बम्बई आदि स्थानों से प्राप्त होता है। इस 'विवेक-विलास' और 'कुन्दकुन्द-श्रावकाचार' दोनों ग्रन्थों का मिलान करने से मालूम होता है कि ये दोनों ग्रन्थ वास्तव में एक ही हैं

और यह एकता इनमें यहाँ तक पाई जाती है कि दोनों का विषय और विषय के प्रतिपादक श्लोक ही एक नहीं, बल्कि दोनों की उल्लाससंख्या, आदिम मंगलाचरण^८ और अन्तिम काव्य^९ भी एक ही है। कहने के लिए दोनों ग्रन्थों में सिर्फ २०-३० श्लोकों का परस्पर हेरफेर है। और यह हेरफेर भी पहले, दूसरे, तीसरे, पाँचवें और आठवें उल्लास में ही पाया जाता है। बाकी उल्लास (नं० ४, ६, ७, ९, १०, ११, १२) बिल्कुल ज्यों के त्यों एक दूसरे की प्रतिलिपि (नकल) मालूम होते हैं। प्रशस्ति को छोड़कर विवेकविलास की पद्यसंख्या १३२१ और कुन्दकुन्द-श्रावकाचार की १२९४ है। विवेकविलास में अन्तिम काव्य के बाद १० पद्यों की एक 'प्रशस्ति' लगी हुई है, जिसमें जिनदत्तसूरि की गुरुपरम्परा आदि का वर्णन है। परन्तु कुन्दकुन्दश्रावकाचार के अन्त में ऐसी कोई प्रशस्ति नहीं पाई जाती है। दोनों ग्रन्थों के किस-किस उल्लास में कितने और कौन-कौनसे पद्य एक दूसरे से अधिक हैं, इसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

ऊपर के कोष्टक से दोनों ग्रन्थों में पद्यों की जिस न्यूनाधिकता का बोध होता है, बहुत संभव

नं० उल्लास	उन पद्यों के नम्बर जो कुन्दकुन्दश्रा. में अधिक हैं।	उन पद्यों के नम्बर जो विवेक विलास में अधिक हैं।	कैफियत (Remarks)
१	६३ से ६९ तक और ७० का पूर्वार्ध; (७ ^{२/१} श्लोक)	८४ से ९८ तक (१४ श्लोक)	कुन्दकुन्द श्रावकाचार के ये ७ ^{२/२} श्लोक दंतधावन प्रकरण के हैं। यह प्रकरण दोनों ग्रन्थों में पहले से शुरु हुआ और बाद में भी रहा है। किस-किस काष्ठ की दातों करने से क्या लाभ होता है, किस प्रकार से दन्तधावन करना निषिद्ध है और किस वर्ण के मनुष्य को कितने अंगुल की दातों व्यवहार में लानी चाहिए, यही सब इन पद्यों में वर्णित है। विवेक विलास के ये १४ श्लोक पूजन-प्रकरण के हैं और किस समय, कैसे द्रव्यों से किस प्रकार पूजन करना चाहिए, इत्यादि वर्णन को लिए हुए हैं।

८. दोनों ग्रन्थों का आदिम मंगलाचरण—

“शाश्वतानन्दरूपाय तमस्तोमैकभास्वते। सर्वज्ञाय नमस्तस्मै कस्मैचित्परत्माने॥१॥

(इसके सिवाय मंगलाचरण के दो पद्य और हैं।)

९. दोनों ग्रन्थों का अन्तिम काव्य—

“स श्रेष्ठः पुरुषाग्रणीः स सुभटोत्तमः प्रसंसास्पदम्। स प्राज्ञः स कलानिधिः स च मुनिः स क्षमातले योगवित्।
स ज्ञानी स गुणिव्रजस्य तिलकं जानाति यः स्वां मृतिम्, निर्मोहः समुपार्जयत्यथ पदं लोकोत्तरम् शाश्वतम्॥१२-१२॥”

२	३३, ३४; (२ श्लोक)	३९ (१ श्लोक)	कुन्दकुन्द श्रावकाचार के दोनों श्लोकों में मूषकादिक के द्वारा किसी वस्तु के कटे-फटे होने पर छेदाकृति से शुभाशुभ जानने का कथन है। यह कथन कई श्लोक पहले से चल रहा है। विवेक विलास का श्लोक नं० ३९ ताम्बूल प्रकरण का है जो पहले से चल रहा है।
३	×	६० (१ श्लोक)	भोजन प्रकरण में एक निमित्त से आयु और धन का नाश मालूम करने के सम्बन्ध में।
५	×	१०, ११, ५७, १४२, १४३, १४४, १४६, १८८ से १९२ तक (१२ श्लोक)	पद्य नं० १०-११ में सोते समय ताम्बूलादि कई वस्तुओं के त्याग का कारण सहित उपदेश है, ५७ वाँ पद्य पुरुषपरीक्षा में हस्तरेखा सम्बन्धी है। दोनों ग्रन्थों में इस परीक्षा के ७५ पद्य और हैं, १४२, १४३, १४४ में पद्मिनी आदि स्त्रियों की पहचान लिखी है। इनसे पूर्व के पद्य में उनके नाम दिए हैं। १४६ में पतिप्रीति ही स्त्रियों को कुमार्ग से रोकने वाली है, इत्यादि कथन है। शेष ५ पद्यों में ऋतुकाल के समय कौन-सी रात्रि को गर्भ रहने से कैसी संतान उत्पन्न होती है, यह कथन पाँचवीं रात्रि से १६ वीं रात्रि के सम्बन्ध में है। इससे पहले चार रात्रियों का कथन दोनों ग्रन्थों में है।
८	२५३ (१ श्लोक)	४९, ६०, ६१, ७५, ८५, २५५, २९३ का उत्तरार्ध, ३४३ का उत्तरार्ध, ३४४ का पूर्वार्ध, ३६६ का उत्तरार्ध, ३६७ का पूर्वार्ध, ४२० के अन्तिम तीन चरण और ४२१ का पहला चरण; (९ ^{१/२} श्लोक)	२५३ वाँ पद्य मीमांसक मत के प्रकरण का है। इसमें मीमांसक मत के देवता के निरूपण और प्रमाणों के कथन की प्रतिज्ञा है, अगले पद्य में प्रमाणों के नाम दिए हैं और दर्शनों के कथन में भी देवता का वर्णन पाया जाता है। पद्य नं० ४९ में अल्पवृष्टि का योग दिया है, ६० में किस-किस महीने में मकान बनवाने से क्या लाभ-हानि होती है, ६१ में कौन से नक्षत्र में घर बनाने का सूत्रपात करना, ७४ में यक्षव्यय के अष्टभेद, इससे पूर्व के पद्य में यक्षव्यय अष्ट प्रकार का है ऐसा दोनों ग्रन्थों में सूचित किया है, ८५ वाँ पद्य 'अपरं च' करके लिखा है, ये चारों पद्य गृहनिर्माण प्रकरण के हैं। २५५ वाँ पद्य जैनदर्शन प्रकरण का है। इसमें श्वेताम्बर साधुओं का स्वरूप दिया है। इससे अगले पद्य में दिगम्बर साधुओं का स्वरूप है। २९३ वाँ पद्य शिवमत के प्रकरण का है। उत्तरार्ध के न होने से साफ अधूरापन प्रकट है, क्योंकि पूर्वार्ध में नव द्रव्यों में से चार के नित्यानित्यत्व का वर्णन है बाकी का वर्णन उत्तरार्ध में है। शेष पद्यों का वर्णन आगे

है कि वह लेखकों की कृपा ही का फल हो। जिस प्रति से विवेकविलास छपाया गया है और जिस प्रति से कुन्दकुन्दश्रावकाचार उतारा गया है, आश्चर्य नहीं कि उनमें या उनकी पूर्व प्रतियों में लेखकों की असावधानी से ये सब पद्य छूट गये हों, क्योंकि पद्यों की इस न्यूनाधिकता में कोई तात्त्विक या सैद्धान्तिक विशेषता नहीं पाई जाती। बल्कि प्रकरण और प्रसंग को देखते हुए इन पद्यों में छूट जाने का ही अधिक खयाल पैदा होता है। दोनों ग्रन्थों से लेखकों के प्रमाद का भी अच्छा परिचय मिलता है। कई स्थानों पर कुछ श्लोक आगे-पीछे पाये जाते हैं। विवेकविलास के तीसरे उल्लास में जो पद्य नं० १७, १८ और ६२ पर दर्ज हैं, वे ही पद्य कुन्दकुन्दश्रावकाचार में क्रमशः नं० १८, १७ और ६० पर दर्ज हैं। आठवें उल्लास में जो पद्य नं० ३१७-३१८ पर लिखे गये हैं, वे ही पद्य कुन्दकुन्दश्रावकाचार में क्रमशः नं० ३११-३१० पर पाये जाते हैं अर्थात् पहला श्लोक पीछे और पीछे का पहले लिखा गया है। कुन्दकुन्दश्रावकाचार के तीसरे उल्लास में श्लोक नं० १६ को 'उक्तं च' लिखा है और ऐसा लिखना ठीक भी है, क्योंकि यह पद्य दूसरे ग्रन्थ का है और इससे पहला पद्य नंबर १५ भी इसी अभिप्राय को लिये हुए है। परन्तु विवेकविलास में इसे 'उक्तं च' नहीं लिखा। इसी प्रकार कहीं-कहीं पर एक ग्रन्थ में एक श्लोक का जो पूर्वाद्ध है, वही दूसरे ग्रन्थ में किसी दूसरे श्लोक का उत्तराद्ध हो गया है और कहीं-कहीं एक श्लोक के पूर्वाद्ध को दूसरे श्लोक के उत्तराद्ध से मिलाकर एक नवीन ही श्लोक का संगठन किया गया है। नीचे के उदाहरणों से इस विषय का और भी स्पष्टीकरण हो जायेगा।

(१) विवेकविलास के आठवें उल्लास में निम्नलिखित दो पद्य दिये गये हैं—

हरितालप्रभैश्चक्री	नेत्रैर्नीलैरहं	मदः।
रक्तैर्नृपः	सितैर्ज्ञानी	मधुपिद्मैर्महाधनः॥३४३॥
सेनाध्यक्षो	गजाक्षः	स्याद्दीर्घाक्षश्चिरजीवितः।
विस्तीर्णाक्षो	महाभोगी	कामी पारावतेक्षणः॥३४४॥

इन दोनों पद्यों में से एक में नेत्र के रंग की अपेक्षा और दूसरे में आकार विस्तार की अपेक्षा कथन है। परन्तु कुन्दकुन्दश्रावकाचार में पहले पद्य का पूर्वाद्ध और दूसरे का उत्तराद्ध मिलाकर एक पद्य दिया है, जिसका नं० ३३६ है। इससे स्पष्ट है कि बाकी के दोनों उत्तराद्ध और पूर्वाद्ध छूट गये हैं।

(२) विवेकविलास के इसी आठवें उल्लास में दो पद्य इस प्रकार हैं—

नद्याः	परतटाद्गोष्ठात्क्षीरद्रोः	सलिलाशयात्।
निर्वर्त्तेतात्मनोऽभीष्टाननुव्रज्य	प्रवासिनः॥३६६॥	
नासहायो	न चाज्ञातैर्नैव दासैः	समं तथा।
नातिमध्यं दिने	नार्धरात्रौ मार्गे	बुधो व्रजेत्॥३६७॥

इन दोनों पद्यों में से पहले पद्य में यह वर्णन है कि यदि कोई अपना इष्टजन परदेश को जावे, तो उसके साथ कहाँ तक जाकर लौट जाना चाहिए और दूसरे में यह कथन है कि मध्याह्न और अर्धरात्रि के समय बिना अपने किसी सहायक को साथ लिये, अज्ञात मनुष्यों तथा गुलामों के साथ मार्ग नहीं

चलना चाहिए। कुन्दकुन्दश्रावकाचार में इन दोनों पद्यों के स्थान में एक पद्य इस प्रकार से दिया है—

नद्यः परतटाद्गोष्ठाक्षीरद्रोः सलिलाशयात्।

नातिमध्यं दिने नार्धरात्रौ मार्गे बुधो व्रजेत्॥३५८॥

यह पद्य बड़ा ही विलक्षण मालूम होता है। पूर्वाद्ध का उत्तराद्ध से कोई सम्बन्ध नहीं मिलता और न दोनों को मिलाकर एक अर्थ ही निकलता है। इससे कहना होगा कि विवेक विलास में दिये हुए दोनों उत्तराद्ध और पूर्वाद्ध यहाँ छूट गये हैं और तभी यह असमंजसता प्राप्त हुई है। विवेकविलास के इसी उल्लाससम्बन्धी पद्य नं० ४२० और ४२१ के सम्बन्ध में भी ऐसी ही गड़बड़ की गई है। पहले पद्य के पहले चरण को दूसरे पद्य के अन्तिम तीन चरणों से मिलाकर एक पद्य बना डाला है, बाकी पहले के पद्य तीन चरण और दूसरे पद्य का पहला चरण, ये सब छूट गये हैं। लेखकों के प्रमाद को छोड़कर, पद्यों की इस घटा-बढ़ी का कोई दूसरा विशेष कारण मालूम नहीं होता। प्रमादी लेखकों द्वारा इतने बड़े ग्रन्थों में दस-बीस पद्यों का छूट जाना तथा उलटफेर हो जाना कुछ भी बड़ी बात नहीं है। इसीलिए ऊपर यह कहा गया है कि ये दोनों ग्रन्थ वास्तव में एक ही हैं। दोनों ग्रन्थों में असली फर्क सिर्फ ग्रन्थ और ग्रन्थकर्ता के नामों का है। विवेकविलास की सन्धियों में ग्रन्थ का नाम 'विवेकविलास' और ग्रन्थकर्ता का नाम 'जिनदत्तसूरि' लिखा है। कुन्दकुन्द-श्रावकाचार की सन्धियों में ग्रन्थ का नाम 'श्रावकाचार' और ग्रन्थकर्ता का नाम कुछ सन्धियों में 'श्रीजिनचन्द्राचार्य के शिष्य कुन्दकुन्दस्वामी' और शेष सन्धियों में केवल 'कुन्दकुन्द स्वामी' दर्ज है। इसी फर्क के कारण प्रथम उल्लास के दो पद्यों में इच्छापूर्वक परिवर्तन भी पाया जाता है। विवेकविलास में वे दोनों पद्य इस प्रकार हैं—

जीववत्प्रतिभा यस्य वचो मधुरिमाचिंतम्।

देहं गेहं श्रियस्तं स्वं वंदे सूरिवरं गुरुम्॥३॥

स्वस्यानस्यापि पुण्याय कुप्रवृत्तिनिवृत्तये।

श्रीविवेकविलासाख्यो ग्रन्थः प्रारभ्यते मितः॥९॥

इन दोनों पद्यों के स्थान में कुन्दकुन्द-श्रावकाचार में ये पद्य दिये हैं—

जीववत्प्रतिभा यस्य वचो मधुरिमाचिंतम्।

देहं गेहं श्रियस्तं स्वं वंदे जिनविधुं गुरुम्॥३॥

स्वस्यानस्यापि पुण्याय कुप्रवृत्तिनिवृत्तये।

श्रावकाचारविन्यासग्रन्थः प्रारभ्यते मितः॥९॥

दोनों ग्रन्थों के इन चारों पद्यों में परस्पर ग्रन्थनाम और ग्रन्थकर्ता के गुरुनाम का ही भेद है। समूचे दोनों ग्रन्थों में यही एक वास्तविक भेद पाया जाता है। जब इस नाममात्र के (ग्रन्थनाम-ग्रन्थकर्तानाम के) भेद के सिवा और तौर पर ये दोनों ग्रन्थ एक ही हैं, तब यह जरूरी है कि इन दोनों में से, उभयनाम की सार्थकता लिये हुए कोई एक ग्रन्थ ही असली हो सकता है, दूसरे को अवश्य ही नकली या बनावटी कहना होगा।

अब यह सवाल पैदा होता है कि इन दोनों में से असली कौन है और नकली या बनावटी कौनसा? दूसरे शब्दों में यों कहिए कि क्या पहले कुन्दकुन्दश्रावकाचार मौजूद था और उसकी सन्धियों तथा दो पद्यों में नामादिक के परिवर्तनपूर्वक नकल करके जिनदत्तसूरि या उनके नाम से किसी दूसरे व्यक्ति ने उस नकल का नाम 'विवेक विलास' रखा है और इस प्रकार से दूसरे विद्वान् ने इस ग्रन्थ को अपनाया है? अथवा पहले विवेकविलास ही मौजूद था और किसी व्यक्ति ने उसकी इस प्रकार से नकल करके उसका नाम 'कुन्दकुन्दश्रावकाचार' रख छोड़ा है और इस तरह पर अपने क्षुद्र विचारों से या अपने किसी गुप्त अभिप्राय की सिद्धि के लिए इस ग्रन्थ को भगवत्कुन्दकुन्द के नाम से प्रसिद्ध करना चाहा है।

यदि कुन्दकुन्दश्रावकाचार को वास्तव में भगवत्कुन्दकुन्द स्वामी का बनाया हुआ माना जाये, तब यह कहना ही होगा कि विवेकविलास उसी पर से नकल किया गया है। क्योंकि श्रीकुन्दकुन्दाचार्य जिनदत्तसूरि से एक हजार वर्ष से भी अधिक काल पहले हो चुके हैं। परन्तु ऐसा मानने और कहने का कोई साधन नहीं है। कुन्दकुन्दश्रावकाचार में श्रीकुन्दकुन्दस्वामी और उनके गुरु का नामोल्लेख होने के सिवा और कहीं भी इस विषय का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता, जिससे निश्चय किया जाये कि यह ग्रन्थ वास्तव में भगवत्कुन्दकुन्द आचार्य का ही बनाया हुआ है। कुन्दकुन्दस्वामी के बाद होने वाले किसी भी माननीय आचार्य की कृति में इस श्रावकाचार का कहीं नामोल्लेख तक नहीं मिलता, प्रत्युत इसके, विवेकविलास का उल्लेख जरूर पाया जाता है। जिनदत्तसूरि के समकालीन या उनसे कुछ ही काल बाद होने वाले वैदिकधर्मावलम्बी विद्वान् श्रीमाधवाचार्य ने अपने 'सर्वदर्शनसंग्रह' नाम के ग्रन्थ में विवेकविलास का उल्लेख किया है और उसमें बौद्धदर्शन तथा आर्हत्दर्शनसम्बन्धी २३ श्लोक विवेकविलास और जिनदत्तसूरि के हवाले से उद्धृत किये हैं^{१०}। ये सब श्लोक कुन्दकुन्दश्रावकाचार में भी मौजूद हैं। इसके सिवा विवेकविलास की एक चार-सौ पाँच-सौ वर्ष की लिखी हुई प्राचीन प्रति बम्बई के जैनमंदिर में मौजूद है^{११}। परन्तु कुन्दकुन्दश्रावकाचार की कोई प्राचीन प्रति नहीं मिलती। इन सब बातों को छोड़कर, खुद ग्रन्थ का साहित्य भी इस बात का साक्षी नहीं है कि यह ग्रन्थ भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य का बनाया हुआ है। कुन्दकुन्दस्वामी की लेखनप्रणाली, उनकी कथनशैली कुछ और ही ढंग की है और उनके विचार कुछ और ही छटा को लिये हुए होते हैं। भगवत्कुन्दकुन्द के जितने ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध हुए हैं, वे सब प्राकृत भाषा में हैं। परन्तु इस श्रावकाचार की भाषा संस्कृत है। समझ में नहीं आता कि जब भगवत्कुन्दकुन्द ने बारीक से बारीक, गूढ़ से गूढ़ और सुगम ग्रन्थों को भी प्राकृत भाषा में रचा है, जो उस समय के लिए उपयोगी भाषा थी, तब वे एक इसी साधारण गृहस्थों के लिए बनाये हुए ग्रन्थ को संस्कृत भाषा में क्यों रचते? परन्तु इसे रहने दीजिए। जैन समाज में आजकल जो भगवत्कुन्दकुन्द के निर्माण किये हुए समयसार, प्रवचनसारादि ग्रन्थ प्रचलित हैं, उनमें

१०. देखो, सर्वदर्शनसंग्रह / पृष्ठ ३८-७२ श्रीव्यंकटेश्वर छापाखाना, बम्बई द्वारा संवत् १९६२ का छपा हुआ।

११. विवेकविलास की इस प्राचीन प्रति का समाचार अभी हाल में मुझे अपने एक मित्र द्वारा मालूम हुआ है।

से किसी भी ग्रन्थ के आदि में कुन्दकुन्दस्वामी ने 'जिनचन्द्राचार्य' गुरु को नमस्काररूप मंगलाचरण नहीं किया है। परन्तु श्रावकाचार के, ऊपर उद्धृत किये हुए, तीसरे पद्य में 'वन्दे जिनविधुं गुरुम्' इस पद्य के द्वारा 'जिनचन्द्र' गुरु को नमस्कार रूप मंगलाचरण पाया जाता है। कुन्दकुन्दस्वामी के ग्रन्थों में आम तौर पर एक पद्य का मंगलाचरण है। सिर्फ 'प्रवचनसार' में पाँच पद्यों का मंगलाचरण मिलता है। परन्तु इस पाँच पद्यों के विशेष मंगलाचरण में भी जिनचन्द्र गुरु को नमस्कार नहीं किया गया है। यह विलक्षणता इसी श्रावकाचार में पाई जाती है। रही मंगलाचरण के भाव और भाषा की बात, वह भी उक्त आचार्य के किसी ग्रन्थ से इस श्रावकाचार की नहीं मिलती। विवेकविलास में भी यही पद्य है, भेद सिर्फ इतना है कि उसमें 'जिनविधुं' के स्थान में 'सूरिवरं' लिखा है। जिनदत्तसूरि के गुरु 'जीवदेव' का नाम इस पद्य के चारों चरणों के प्रथमाक्षरों को मिलाने से निकलता है। यथा—

जीवदेवत्प्रतिभा यस्य, वचो मधुरिमांचितम्। देहं गेहं श्रियस्तं स्वं, वन्दे सूरिवरं गुरुम्॥३॥	}	जी + व + दे + व = जीवदेव
---	---	--------------------------

बस इतनी ही इस पद्य में कारीगरी (रचनाचातुरी) रखी गई है। और तौर पर इसमें कोई विशेष गौरव की बात नहीं पाई जाती। विवेकविलास के भाषाकार ने भी इस रचनाचातुरी को प्रकट किया है। इससे यह पद्य कुन्दकुन्द-स्वामी का बनाया हुआ न होकर जीवदेव के शिष्य जिनदत्तसूरि का ही बनाया हुआ निश्चित होता है। अवश्य ही कुन्दकुन्दश्रावकाचार में 'सूरिवरं' के स्थान में 'जिनविधुं' की बनावट की गई है। इस बनावट का निश्चय और भी अधिक दृढ़ होता है, जबकि दोनों ग्रन्थों के, ऊपर उद्धृत किये हुए पद्य नं ९ को देखा जाता है। इस पद्य में ग्रन्थ के नाम का परिवर्तन है—'विवेकविलास' के स्थान में 'श्रावकाचार' बनाया गया है, वास्तव में यदि देखा जाये तो यह ग्रन्थ कदापि 'श्रावकाचार' नहीं हो सकता। श्रावक की ११ प्रतिमाओं और १२ व्रतों का वर्णन तो दूर रहा, इस ग्रन्थ में उनका नाम तक भी नहीं है। भगवत्कुन्दकुन्द ने स्वयं षट्पाहुड के अन्तर्गत 'चारित्रपाहुड' में ११ प्रतिमा और १२ व्रतरूप श्रावकधर्म का वर्णन किया है। और इस कथन के अन्त की २७वीं गाथा में एवं "सावयधम्मं संजमचरणं उदेसियं सयलं" इस वाक्य के द्वारा इसी (११ प्रतिमा, १२ व्रतरूप संयमाचरण) को श्रावकधर्म बतलाया है। परन्तु वे ही कुन्दकुन्द अपने श्रावकाचार में जो खास श्रावकधर्म के ही वर्णन के लिए लिखा जाये, उन ११ प्रतिमादि का नाम तक भी न दें, यह कभी हो ही नहीं सकता। इससे साफ प्रकट है कि यह ग्रन्थ श्रावकाचार नहीं है, बल्कि विवेकविलास के उक्त ९वें पद्य में 'विवेकविलासाख्यः' इस पद के स्थान में 'श्रावकाचार-विन्यास' यह पद रखकर किसी ने इस ग्रन्थ का नाम वैसे ही श्रावकाचार रख छोड़ा है। अब पाठकों को यह जानने की जरूर उत्कण्ठा होगी कि जब इस ग्रन्थ में श्रावकधर्म का वर्णन नहीं है, तब क्या वर्णन है? अतः इस ग्रन्थ में जो कुछ वर्णित है, उसका दिग्दर्शन नीचे कराया जाता है—

“सवेरे उठने की प्रेरणा, स्वप्नविचार, स्वरविचार, सवेरे पुरुषों को अपना दाहिना और स्त्रियों को बायाँ हाथ देखना, मलमूत्रत्याग और गुदादिप्रक्षालनविधि, दन्तधावन-विधि, सवेरे नाक से पानी पीना, तेल के कुरले करना, केशों को संवारना, दर्पण देखना, माता-पितादिक की भक्ति और पालन, देहली आदि का पूजन, दक्षिण वाम स्वर से प्रश्नों का उत्तरविधान, सामान्य उपदेश, चन्द्रबलादि के विचार करने की प्रेरणा, देवमूर्ति के आकारादि का विचार, मंदिर-निर्माणविधि, भूमिपरीक्षा, काष्ठपाषाणपरीक्षा, स्नानविचार, क्षौरकर्म (हजामत) विचार, वित्तादिक के अनुकूल शृङ्गार करने की प्रेरणा, नवीनवस्त्रधारणविचार, ताम्बूल भक्षण की प्रेरणा और विधि, खेती, पशुपालन और अन्नसंग्रहादि के द्वारा धनोपार्जन का विशेष वर्णन, वणिक्व्यवहारविधि, राज्यसेवा, राजा, मंत्री, सेनापति और सेवक का स्वरूपवर्णन, व्यवसायमहिमा, देवपूजा, दान की प्रेरणा, भोजन कब, कैसा, कहाँ और किस प्रकार करना, न करना आदि, समय मालूम करने की विधि, भोजन में विष की परीक्षा, आमदनी और खर्च आदि का विचार करना, संध्यासमय निषिद्ध कर्म, दीपकशकुन, रात्रि को निषिद्ध कर्म, कैसी चारपाई पर किस प्रकार सोना, वर के लक्षण, वधू के लक्षण, सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार शरीर के अङ्गोपाङ्ग तथा हस्तरेखादिक के द्वारा पुरुषपरीक्षा और स्त्रीपरीक्षा का विशेष वर्णन लगभग १०० श्लोकों में, विषकन्या का लक्षण, किस स्त्री को किस दृष्टि से देखना, त्याज्य स्त्रियाँ, स्त्रियों के पद्मिनी, संखिनी आदि भेद, स्त्रियों का वशीकरण, सुरति के चिह्न, ऋतुभेद से मैथुनभेद, स्त्रियों से व्यवहार, प्रेम टूटने के कारण, पति से विरक्त स्त्रियों के लक्षण, कुलस्त्री का लक्षण और कर्तव्य, रजस्वला का व्यवहार, मैथुनविधि, वीर्यवर्धक पदार्थों के सेवन की प्रेरणा, गर्भ में बालक के अङ्गोपाङ्ग बनने का कथन, गर्भस्थित बालक के स्त्री-पुरुष-नपुंसक होने की पहचान, जन्ममुहूर्तविचार, बालक के दाँत निकलने पर शुभाशुभ विचार, निद्राविचार, ऋतुचर्या, वार्षिक श्राद्ध करने की प्रेरणा, देश और राज्य का विचार, उत्पातादि निमित्तविचार, वस्तु की तेजी मंदी जानने का विचार, गति और फलविचार, गृहनिर्माणविचार, गृहसामग्री और वृक्षादिक का विचार, विद्यारम्भ के लिए नक्षत्रादि विचार, गुरुशिष्य लक्षण और उनका व्यवहार, कौन-कौन विद्यायें और कलायें सीखनी, विषलक्षण तथा सर्पादिक के छूने का निषेध, सर्पादिक से डसे हुए मनुष्य के विष दूर होने-न होने आदि का विचार और चिकित्सा (९८ श्लोकों में), षट्दर्शनों का वर्णन, सविवेक वचनविचार, किस-किस वस्तु को देखना और किस को नहीं, दृष्टिविचार और नेत्रस्वरूपविचार, चलने फिरने का विचार, नीति का विशेषोपदेश, (६५ श्लोकों में) पाप के काम और क्रोधादि के त्याग का उपदेश, धर्म करने की प्रेरणा, दान, शील, तप और १२ भावनाओं का संक्षिप्त कथन, पिण्डस्थादि ध्यान का उपदेश, ध्यान की साधकसामग्री, जीवात्मासम्बन्धी प्रश्नोत्तर, मृत्युविचार और विधिपूर्वक शरीरत्याग की प्रेरणा।”

यही सब इस ग्रन्थ की संक्षिप्त विषयसूची है। संक्षेप से, इस ग्रन्थ में सामान्य नीति, वैद्यक, ज्योतिष, निमित्त, शिल्प और सामुद्रिकादि शास्त्रों के कथनों का संग्रह है। इससे पाठक खुद समझ सकते हैं कि यह ग्रन्थ असलियत में ‘विवेकविलास’ है या ‘श्रावकाचार’। यद्यपि इस विषयसूची से

पाठकों को इतना अनुभव जरूर हो जायेगा कि इस प्रकार के कथनों को लिये हुए यह ग्रन्थ भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य का बनाया हुआ नहीं हो सकता, क्योंकि भगवत्कुन्दकुन्द एक ऊँचे दर्जे के आत्मानुभवी साधु और संसार-देह-भोगों से विरक्त महात्मा थे और उनके किसी भी प्रसिद्ध ग्रन्थ से उनके कथन का ऐसा ढंग नहीं पाया जाता है। परन्तु फिर भी इस नाममात्र के श्रावकाचार के कुछ विशेष कथनों को, नमूने के तौर पर नीचे दिखलाकर और भी अधिक इस बात को स्पष्ट किये देता हूँ कि यह ग्रन्थ भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य का बनाया हुआ नहीं है—

१. भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य के ग्रन्थों में मंगलाचरण के साथ या उसके अनन्तर ही ग्रन्थ की प्रतिज्ञा पाई जाती है और ग्रन्थ का फल तथा आशीर्वाद, यदि होता है तो वह, अन्त में होता है। परन्तु इस ग्रन्थ के कथन का कुछ ढंग ही निराला है। इसमें पहले तीन पद्यों में तो मंगलाचरण किया गया, चौथे पद्य में ग्रन्थ का फल, लक्ष्मी की प्राप्ति आदि बतलाते हुए ग्रन्थ को आशीर्वाद दिया गया, पाँचवें में लक्ष्मी को चंचल कहने वालों की निन्दा की गई, छठे-सातवें में लक्ष्मी की महिमा और उसकी प्राप्ति की प्रेरणा की गई, आठवें-नौवें में (इतनी दूर आकर) ग्रन्थ की प्रतिज्ञा और उसका नाम दिया गया है। दसवें में यह बतलाया है कि इस ग्रन्थ में जो कहीं-कहीं (कहीं-कहीं या प्रायः सर्वत्र?) प्रवृत्तिमार्ग का वर्णन किया गया है, वह भी विवेकी द्वारा आदर किया हुआ निवृत्तिमार्ग में जा मिलता है। ग्यारहवें-बारहवें में फिर ग्रन्थ का फल और एक बृहत् आशीर्वाद दिया गया है, इसके बाद ग्रन्थ कथन शुरू किया है। इस प्रकार का अक्रम कथन पढ़ने में बहुत ही खटकता है और वह कदापि भगवत्कुन्दकुन्द का नहीं हो सकता। ऐसे और भी कथन इस ग्रन्थ में पाये जाते हैं। अस्तु; इन पद्यों में से पाँचवाँ पद्य इस प्रकार है—

चंचलत्वं कलङ्कं ये श्रियो ददति दुर्धियः।

ते मुग्धाः स्वं न जानन्ति निर्विवेकमपुण्यकम्॥

अर्थात् जो दुर्बुद्धि लक्ष्मी पर चंचलता का दोष लगाते हैं, वे मूढ़ यह नहीं जानते हैं कि हम खुद निर्विवेकी और पुण्यहीन हैं। भावार्थ—जो लक्ष्मी को चंचल बतलाते हैं, वे दुर्बुद्धि, निर्विवेकी और पुण्यहीन हैं।

पाठकगण! क्या अध्यात्मरस के रसिक और अपने ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर दूसरों के शुद्धात्मस्वरूप की प्राप्ति करने का हार्दिक प्रयत्न करनेवाले महर्षियों के ऐसे ही वचन होते हैं? कदापि नहीं। भगवत्कुन्दकुन्द तो क्या, सभी आध्यात्मिक आचार्यों ने लक्ष्मी को ‘चंचला’, ‘चपला’, ‘इन्द्रजालोपमा’, ‘क्षणभंगुरा’ इत्यादि विशेषणों के साथ वर्णन किया है। नीतिकारों ने भी ‘चलालक्ष्मीश्चला प्राणाः ...’ इत्यादि वाक्यों द्वारा ऐसा ही प्रतिपादन किया है और वास्तव में लक्ष्मी का स्वरूप है भी ऐसा ही। फिर इस कहने में दुर्बुद्धि और मूढ़ता की बात ही कौनसी हुई, यह कुछ समझ में नहीं आता। यहाँ पर पाठकों के हृदय में यह प्रश्न जरूर उत्पन्न होगा कि जब ऐसा है, तब जिनदत्तसूरि ने ही क्यों इस प्रकार का कथन किया है। इसका उत्तर सिर्फ इतना ही हो सकता है कि इस बात को तो जिनदत्तसूरि

ही जानें कि उन्होंने क्यों ऐसा वर्णन किया है। परन्तु ग्रन्थ के अन्त में दी हुई उनकी 'प्रशस्ति' से इतना जरूर मालूम होता है कि उन्होंने यह ग्रन्थ जाबाली-नगराधिपति उदयसिंह राजा के मंत्री देवपाल के पुत्र धनपाल को खुश करने के लिए बनाया था। यथा—

तन्मनःतोषपोषाय

जिनाद्यैर्दत्तसूरिभिः।

श्रीविवेकविलासाख्यो ग्रन्थोऽयं निर्ममेऽनघः॥९॥

शायद इस मंत्रीसुत की प्रसन्नता के लिए ही जिनदत्त सूरि को ऐसा लिखना पड़ा हो। अन्यथा उन्होंने खुद दसवें उल्लास के पद्य नं० ३१ में धनादिक को अनित्य वर्णन किया है।

२. इस ग्रन्थ के प्रथम उल्लास में जिनप्रतिमा और मंदिर के निर्माण का वर्णन करते हुए लिखा है कि गर्भगृह के अर्धभाग के भित्ति द्वारा पाँच भाग करके पहले भाग में यक्षादिक की, दूसरे भाग में सर्वदेवियों की, तीसरे भाग में जिनेन्द्र, सूर्य, कार्तिकेय और कृष्ण की, चौथे भाग में ब्रह्मा की और पाँचवें भाग में शिवलिङ्ग की प्रतिमायें स्थापित करनी चाहिए। यथा—

प्रासादगर्भगेहाद्धे भित्तिः पञ्चधा कृते।

यक्षाद्याः प्रथमे भागे देव्यः सर्वा द्वितीयके॥१४८॥

जिनार्कस्कन्दकृष्णानां प्रतिमा स्युस्तृतीयके।

ब्रह्मा तु तुर्यभागे स्याल्लिङ्गमीशस्य पंचमे॥१४९॥

यह कथन कदापि भगवत्कुन्दकुन्द का नहीं हो सकता। न जैनमत का ऐसा विधान है और न प्रवृत्ति ही इसके अनुकूल पाई जाती है। श्वेताम्बर जैनियों के मन्दिरों में भी यक्षादि को छोड़कर महादेव के लिङ्ग की स्थापना तथा कृष्णादिक की मूर्तियाँ देखने में नहीं आतीं। शायद यह कथन भी जिनदत्तसूरि ने मंत्रीसुत की प्रसन्नता के लिए, जिसे प्रशस्ति के सातवें पद्य में सर्वधर्मों का आधार बतलाया गया है, लिख दिया हो।

३. इस ग्रन्थ के दूसरे उल्लास का एक पद्य इस प्रकार है—

साध्वर्थे जीवरक्षायै गुरुदेवगृहादिषु।

मिथ्याकृतैरपि नृणां शपथैर्नास्ति पातकम्॥६९॥

इस पद्य में लिखा है कि साधु के वास्ते और जीवरक्षा के लिए गुरु तथा देव के मंदिरादिक में झूठी कसम (शपथ) खाने से कोई पाप नहीं लगता। यह कथन जैनसिद्धान्त के बिल्कुल विरुद्ध है। भगवत्कुन्दकुन्द का ऐसा नीचा और गिरा हुआ उपदेश नहीं हो सकता।

४. आठवें उल्लास में ग्रन्थकार लिखते हैं कि बहादुरी से, तप से, विद्या से या धन से अत्यन्त अकुलीन मनुष्य भी क्षणमात्र में कुलीन हो जाता है। यथा—

शौर्येण वा तपोभिर्वा विद्यया वा धनेन वा।

अत्यन्तमकुलीनोऽपि कुलीनो भवति क्षणात्॥३९१॥

मालूम नहीं होता कि आचारादि को छोड़कर केवल बहादुरी, विद्या या धन का कुलीनता से

क्या सम्बन्ध है और किस सिद्धान्त पर यह कथन अवलम्बित है।

५. दूसरे उल्लास में ताम्बूलभक्षण की प्रेरणा करते हुए लिखा है कि—

यः स्वादयति ताम्बूलं वत्क्रभूषाकरं नरः।

तस्य दामोदरस्येव न श्रीस्त्यजति मंदिरम्॥३९॥

अर्थात् जो मनुष्य मुख की शोभा बढ़ाने वाला पान चबाता है, उसके घर को लक्ष्मी इस प्रकार से नहीं छोड़ती, जिस प्रकार वह श्रीकृष्ण को नहीं छोड़ती।

भावार्थ—पान चबाने वाला कृष्णजी के समान लक्ष्मीवान् होता है।

यह कथन भी जैनमत के किसी सिद्धान्त से सम्बन्ध नहीं रखता और न किसी दिगम्बर आचार्य का ऐसा उपदेश हो सकता है। आजकल बहुत से मनुष्य रात-दिन पान चबाते रहते हैं, परन्तु किसी को भी श्रीकृष्ण के समान लक्ष्मीवान् होते नहीं देखा।

६. ग्यारहवें उल्लास में ग्रन्थकार लिखते हैं कि जिस प्रकार बहुत से वर्णों की गायों में दुग्ध एक ही वर्ण का होता है, उसी प्रकार सर्वधर्मों में तत्त्व एक ही है। यथा—

एकवर्णं यथा दुग्धं बहुवर्णासु धेनुषु।

तथा धर्मस्य वैचित्र्यं तत्त्वमेकं परं पुनः॥७३॥

यह कथन भी जैनसिद्धान्त के विरुद्ध है। भगवत्कुन्दकुन्द के ग्रन्थों से इसका कोई मेल नहीं मिलता। इसलिए यह कदापि उनका वचन नहीं हो सकता।

७. पहले उल्लास में एक स्थान पर लिखा है कि जिस मन्दिर पर ध्वजा नहीं है, उस मन्दिर में किये हुए पूजन, होम और जपादिक सब ही विलुप्त हो जाते हैं अर्थात् उनका कुछ भी फल नहीं होता। यथा—

प्रासादे ध्वजनिर्मुक्ते पूजाहोमजपादिकम्।

सर्वं विलुप्यते यस्मात्तस्मात्कार्यो ध्वजोच्छ्रयः॥१७१॥

यह कथन बिल्कुल युक्ति और आगम के विरुद्ध है। इसको मानते हुए जैनियों को अपनी कर्म-फिलॉसोफी को उठाकर रख देना होगा। उमास्वामिश्रावकाचार में भी यह पद्य आया है, उक्त श्रावकाचार पर लिखे गये परीक्षालेख में इस पद्य पर पहले बहुत कुछ लिखा जा चुका है। इसलिए अब पुनः अधिक लिखने की जरूरत नहीं है।

८. आठवें उल्लास में जिनेन्द्रदेव का स्वरूप वर्णन करते हुए अठारह दोषों के नाम इस प्रकार दिये हैं— १. वीर्यान्तराय, २. भोगान्तराय, ३. उपभोगान्तराय, ४. दानान्तराय, ५. लाभान्तराय, ६. निद्रा, ७. भय, ८. अज्ञान, ९. जुगुप्सा, १०. हास्य, ११. रति, १२. अरति, १३. राग, १४. द्वेष, १५. अविरति, १६. काम, १७. शोक और १८. मिथ्यात्व। यथा—

बलभोगोपभोगानामुभयोर्दानलाभयोः

।

नान्तरायस्तथा निद्रा, भीरज्ञानं जुगुप्सनम्॥२४१॥

हासो रत्यरती रागद्वेषावविरतिः स्मरः ।

शोको मिथ्यात्वमेतेऽष्टादशदोषा न यस्य सः॥२४२॥

अठारह दोषों के ये नाम श्वेताम्बर जैनियों द्वारा ही माने गये हैं। प्रसिद्ध श्वेताम्बर साधु आत्मारामजी ने भी इन्हीं अठारह दोषों का उल्लेख अपने 'जैनतत्त्वादर्थ' नामक ग्रन्थ के पृष्ठ ४ पर किया है। परन्तु दिगम्बरजैन सम्प्रदाय में जो अठारह दोष माने जाते हैं और जिनका बहुत से दिगम्बर जैनग्रन्थों में उल्लेख है, उनके नाम इस प्रकार हैं—१. क्षुधा, २. तृषा, ३. भय, ४. द्वेष, ५. राग, ६. मोह, ७. चिन्ता, ८. जरा, ९. रोग, १०. मृत्यु, ११. स्वेद, १२. खेद, १३. मद, १४. रति, १५. विस्मय, १६. जन्म, १७. निद्रा और १८. विषाद।

दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायों की इस अष्टादश दोषों की नामावली में बहुत बड़ा अन्तर है। सिर्फ निद्रा, भय, रति, राग और द्वेष ये पाँच दोष ही दोनों में एक रूप से पाये जाते हैं। बाकी सब दोषों का कथन परस्पर भिन्न-भिन्न है और दोनों के भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों पर अवलम्बित है। इससे निःसन्देह कहना पड़ता है कि यह ग्रन्थ श्वेताम्बर सम्प्रदाय का ही है। दिगम्बरों का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। और श्वेताम्बर सम्प्रदाय का भी यह कोई सिद्धान्त ग्रन्थ नहीं है, बल्कि मात्र विवेकविलास है, जो कि एक मंत्रीसुत की प्रसन्नता के लिए बनाया गया था। विवेकविलास की संधियाँ और उसके उपर्युल्लिखित दो पद्यों (नं० ३, ९) में कुछ ग्रन्थनामादि का परिवर्तन करके ऐसे किसी व्यक्ति ने, जिसे इतना भी ज्ञान नहीं था कि दिगम्बर और श्वेताम्बरों द्वारा माने हुए अठारह दोषों में कितना भेद है, विवेकविलास का नाम 'कुन्दकुन्दश्रावकाचार' रखा है। और इस तरह पर इस नकली श्रावकाचार के द्वारा साक्षी आदि अपने किसी विशेष प्रयोजन को सिद्ध करने की चेष्टा की है। अस्तु, इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जिस व्यक्ति ने यह परिवर्तनकार्य किया है, यह बड़ा ही धूर्त और दिगम्बर जैनसमाज का शत्रु था। परिवर्तन का यह कार्य कब और कहाँ पर हुआ है, इसका मुझे अभी तक ठीक निश्चय नहीं हुआ। परन्तु जहाँ तक मैं समझता हूँ, इस परिवर्तन को कुछ ज्यादा समय नहीं हुआ है और इसका विधाता जयपुर नगर है।

अन्त में जैन विद्वानों से मेरा सविनय निवेदन है कि यदि उनमें से किसी के पास कोई ऐसा प्रमाण मौजूद हो, जिससे यह ग्रन्थ भगवत्कुन्दकुन्द का बनाया हुआ सिद्ध हो सके, तो वे खुशी से बहुत शीघ्र उसे प्रकाशित कर दें। अन्यथा उनका यह कर्तव्य होना चाहिए कि जिस भण्डार में यह ग्रन्थ मौजूद हो, उस ग्रन्थ पर लिख दिया जाये कि "यह ग्रन्थ भगवत् कुन्दकुन्दस्वामी का बनाया हुआ नहीं है, बल्कि वास्तव में यह श्वेताम्बर जैनियों का 'विवेकविलास' ग्रन्थ है। किसी धूर्त ने ग्रन्थ की सन्धियों और तीसरे व नौवें पद्य में ग्रन्थ नामादिक का परिवर्तन करके इसका नाम 'कुन्दकुन्दकश्रावकाचार' रख दिया है।" साथ ही उन्हें अपने भण्डारों के दूसरे ग्रन्थों को जाँचना चाहिए और जाँच के लिए दूसरे विद्वानों को देना चाहिए। केवल वे हस्तलिखित भण्डारों में मौजूद हैं और उनके साथ दिगम्बराचार्यों

का नाम लगा हुआ है, इतने पर से ही उन्हें दिगम्बर-ऋषि-प्रणीत न समझ लें। उन्हें खूब समझ लेना चाहिए कि जैनसमाज में एक ऐसा युग भी आ चुका है जिसमें कषायवश प्राचीन आचार्यों की कीर्ति को कलंकित करने का प्रयत्न किया गया है और अब उस कीर्ति को सुरक्षित रखना हमारा खास काम है। इत्यलं विज्ञेषु।

